प्रवचन नं. २९८, गाथा-२२० से २२३, श्लोक-१५१ शुक्रवार, भाद्र शुक्ल ९
दिनाङ्क ३१-०८-१९७९

दसलक्षणी का पाँचवाँ दिन शौचधर्म है।

यत्परदारार्थादिषु जन्तुषु निःस्पृहमहिंसकं चेतः।
दुश्छेद्यान्तर्मलहृत्तदेव शौचं परं नान्यत्॥

जिसका चित्त परस्त्री और परधन की अभिलाषा नहीं करता हुआ छह काय के जीवों की हिंसा से रहित हो जाता है, उसे ही दुर्भेद्य, अभ्यन्तर कलुषता को दूर करनेवाला उत्तम शौचधर्म कहा जाता है। 'शौच' शब्द से निर्लोभता। आया था न? क्षमा। क्रोध के सामने क्षमा; मान के सामने मार्दव; कपट के सामने आर्जव और लोभ के सामने यह शौच है। पहला सत्य आ गया है। इसलिए यह बाद में लिया।

अन्दर आत्मा परहिंसा से रहित और परस्त्री और परघन के प्रेम से-ममता से रहित, आहाहा! ऐसा जो आत्मा का पवित्र परिणामरूप स्वभाव, उसे यहाँ शौच कहते हैं। फिर तो ऐसा कहते हैं कि यह स्नानादि शौच है, वह कहीं शौच नहीं है। यदि प्राणी का मन मिथ्यात्वादि दोषों से मलिन हुआ हो, आहाहा! राग की रुचि से मन मलिन मिथ्यात्व से हुआ हो, निर्मलानन्द प्रभु की रुचि से छूटकर जिसे उस राग का विकल्प शुभ या अशुभ, उसकी रुचि में जिसका झुकाव हुआ। आहाहा! वह चित्त मिथ्यात्वादि दोष से मलिन है, तो फिर गंगा, समुद्र, पुष्कर आदि सभी तीर्थों में सदा स्नान करने पर भी... 'प्रायः' शब्द पड़ा है। प्रायः अर्थात् शरीर का भले स्वच्छ हो, ऐसा। अन्दर का नहीं होता। प्रायः शब्द पड़ा है? 'प्रयोगशुद्धकरा' इस शरीर की मलिनता तो पानी से टलती है परन्तु मिथ्यात्व की मलिनता इससे नहीं टलती। मिथ्यात्व की मलिनता है और फिर लाख बार शत्रुंजय स्नान करे नहीं? शत्रुंजय है न? वहाँ भी जैन स्नान करते हैं परन्तु अन्तर में राग की एकता की मलिनता का मिथ्यात्व भाव, ऐसे मलिनता के परिणामसहित स्नान करे तो कुछ शुद्धि नहीं होती। आहाहा! उसे तो अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान शौच-पवित्र निर्ग्रन्थ निर्लोभस्वरूप, आत्मा का निर्ग्रन्थस्वरूप ही है। आहाहा! उस निर्ग्रन्थस्वरूप की दृष्टि और एकाग्रता होने पर जो पवित्रता होती है, वह बाहर से कहीं स्नान से पवित्रता नहीं होती। आहाहा!

अतिशय विशुद्धि नहीं हो सकती, वह योग्य ही है। मद्य के प्रवाह से परिपूर्ण घट शराब से भरा हुआ घड़ा... आहाहा! बाहर में से विशुद्ध पानी से अनेक बार धोया जाए, अन्दर शराब भरी है, बाहर पानी से बारम्बार धोया जाए तो क्या शुद्ध हो सकता है? इसी प्रकार जिसके घट में ही मिथ्यात्व भाव है... आहाहा! राग और पुण्यादि के परिणाम, वे मेरे हैं, मुझे लाभदायक है—ऐसा जो मिथ्यात्वरूपी मलिन चित्त, यह चाहे जितने बाहर में स्नान करे, इससे उसे शौच नहीं होता। आहाहा! विशेष कहते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि मन शुद्ध होवे तो स्नानादि बिना उत्तम शौच हो सकता है परन्तु इससे विपरीत यदि मन अपवित्र हो, गंगा आदि अनेक जल में स्नान करने पर भी शौचधर्म कभी नहीं होता। पवित्रता तो अन्दर में शरीर में लाख स्नान करे, जैन शत्रुंजय स्नान करने जाए, वहाँ शत्रुंजय नदी है, (उसमें) स्नान करे। पानी में स्नान करने से क्या होगा? आहाहा! राग को धोने की दशा तो आत्मा के शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र हैं। यह मलिनता

टाले नहीं और बाहर की मलिनता टाले, उससे कहीं उसे निर्मलता / शौच नहीं होता। यह पाँचवाँ धर्म कहा।

यहाँ अपने यह आया है न? गाथा आयी है न? २२० से, २२० से गाथा है।

भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।
संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादुं।।२२०।।

तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे।
भुंजंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं।।२२१।।

जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे।।२२२।।

तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिदूण।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे।।२२३।।

हरिगीत—

ज्यों शंख विविध सचित्त, मिश्र, अचित्त वस्तू भोगते।
पर शंख के शुक्लत्व को नहिं, कृष्ण कोई कर सके।।२२०।।

त्यों ज्ञानि भी मिश्रित, सचित्त, अचित्त वस्तू भोगते।
पर ज्ञान ज्ञानी का नहीं, अज्ञान कोई कर सके।।२२१।।

जब ही स्वयं वो शंख, तजकर स्वीय श्वेतस्वभाव को।
पावे स्वयं कृष्णत्व तब ही, छोड़ता शुक्लत्व को।।२२२।।

त्यों ज्ञानि भी जब ही स्वयं निज, छोड़ ज्ञानस्वभाव को।
अज्ञानभावों परिणमे, अज्ञानता को प्राप्त हो।।२२३।।

टीका :- जैसे यदि शंख परद्रव्य को भोगे-खाये, तथापि उसका श्वेतपन अन्य के द्वारा काला नहीं किया जा सकता... काले जीव खाये तो भी उसका सफेदपना कहीं उससे काला नहीं होता। आहाहा! **क्योंकि पर अर्थात् परद्रव्य किसी द्रव्य को परभावस्वरूप करने का निमित्त (कारण) नहीं हो सकता,...** परद्रव्य बन्ध का

कारण है ही नहीं। वह तो स्वतन्त्र बाहर की चीज़ है। आहाहा! बन्ध का कारण तो इसका मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव, वह बन्ध का कारण है। परवस्तु बन्ध का कारण नहीं है। सगे, कुटुम्ब, प्रियजन, पैसा, मकान, वह कोई मलिनता का कारण नहीं है, वह कोई दुःख का कारण नहीं है। आहाहा!

वह **परद्रव्य किसी द्रव्य को परभावस्वरूप...** परद्रव्य किसी द्रव्य को परभाव-विकार स्वरूप **करने का निमित्त (कारण) नहीं हो सकता,...** आहाहा! यह तो आता है न इसमें? आगे (आता है)। वस्तु के आश्रय से भले अध्यवसाय हो, परन्तु वस्तु बन्ध का कारण नहीं है, उसके लक्ष्य से, उसके आश्रय से भले अध्यवसाय करे, राग की एकताबुद्धि (करे) परन्तु वह वस्तु बन्ध का कारण नहीं है। आहाहा! यहाँ कहते हैं **परद्रव्य किसी द्रव्य को परभावस्वरूप...** आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म, परपदार्थ किसी भी प्रकार से आत्मा को परभाव कर सकने का कारण नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार यदि ज्ञानी परद्रव्य को भोगे... भोगे अर्थात् वह इसे दिखता है। आहाहा! दूसरे लोग देखते हैं न कि, देखो! यह स्त्री के संग में आता है, लक्ष्मी के संग में आता है। इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है। बाकी **परद्रव्य को भोगे तो भी उसका ज्ञान अन्य के द्वारा अज्ञान नहीं किया जा सकता...** वह पर को भोगने पर भी पर द्वारा मिथ्या दोष लगता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! **क्योंकि पर अर्थात् परद्रव्य किसी द्रव्य को परभावस्वरूप करने का निमित्त (कारण) नहीं हो सकता,...** जैसे शंख काली चीज़ खाये तो भी वह सफेद का काला नहीं किया जा सकता; उसी प्रकार धर्मी को परद्रव्य का भोग होने पर भी परद्रव्य उसे मलिनता का कारण नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य किसी द्रव्य को... आहाहा! तीर्थंकर का जीव या तीर्थंकर का शरीर या समवसरण, वह परद्रव्य है। वह परद्रव्य बन्ध का कारण नहीं है। तथा वह धर्म का कारण नहीं है। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य तो भिन्न है, वह चीज़ कहीं बन्ध का कारण या धर्म का कारण नहीं है। आहाहा! परद्रव्य की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह भक्ति कहीं आत्मा का धर्म नहीं होता। आहाहा! भक्ति तो राग है। उस परद्रव्य से धर्म हो, या परद्रव्य से मलिनता हो, यह बात नहीं है। आहाहा!

ज्ञानी को दूसरे के अपराध के निमित्त से बन्ध नहीं होता। इसलिए धर्मी को... आहाहा! ज्ञान में आनन्द का जहाँ अन्दर अनुभव है, आहाहा! उसे परद्रव्य के संयोग से उसे बन्ध नहीं होता। आहाहा! अन्तर में जहाँ निर्मलता द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर निर्मलता प्रगट हुई है, उसे परद्रव्य कोई मलिन कर सके, कर्म का उदय आवे और उसे मलिन कर सके, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चिदानन्द भगवान आत्मा पवित्रता का पिण्ड प्रभु, उसकी जहाँ दृष्टि और निर्मल ज्ञान हुआ, उसे परद्रव्य के संयोग चाहे जितने हों, वे उसे कोई मलिन कर सकें, ऐसा नहीं है। आहाहा! अधिक द्रव्य बहुत हों तो उसे मलिनता का अधिक कारण हो, थोड़े हों तो थोड़ी मलिनता का कारण हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! मलिनता का कारण तो स्वयं ज्ञानानन्दस्वभाव को छोड़ दे, (वह है)।

और जब वही शंख,... उन काले द्रव्यों को खाता होने पर भी शंख काले द्रव्य से काला नहीं होता। अब वही शंख, **परद्रव्य को भोगता हुआ अथवा न भोगता हुआ,...** आहाहा! वह काले कीड़े खाता हो या न खाता हो परन्तु जब शंख स्वयं श्वेतपना छोड़कर काला होता है, तब पर के कारण से नहीं हुआ है। आहाहा! है? **स्वयमेव कृष्णरूप परिणमित होता है, तब उसका श्वेतभाव स्वयंकृत कृष्णभाव होता है (स्वयमेव किये गये कृष्णभावरूप होता है),...** वह तो स्वयं से किया गया है, वह परद्रव्य से किया गया नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार जब वही ज्ञानी,... वही ज्ञानी, जिसे पर के भोगने के काल में भी ज्ञानी को मलिनता का कारण नहीं है। आहाहा! **वही ज्ञानी, परद्रव्य को भोगता हुआ अथवा न भोगता हुआ, ज्ञान को छोड़कर स्वयमेव अज्ञानरूप परिणमित होता है...** आहाहा! ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, ऐसा जो परिणमन है, उसे छोड़कर रागरूप हूँ, ऐसे अज्ञानरूप परिणमे, तब स्वयं के कारण वह मैल—मिथ्यात्व खड़ा होता है। आहाहा! कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्र से मिथ्यात्व नहीं होता, ऐसा कहते हैं। तथा सुगुरु, सुशास्त्र को मानने से समकित नहीं होता। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन हुआ, चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस भरा प्रभु, उसका जहाँ भान हुआ, उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे परद्रव्य के भोगने में मलिनता हो, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा!

वह स्वयं ही जब आत्मा के ज्ञानस्वरूप को छोड़कर पर्यायबुद्धि में अर्थात् राग की बुद्धि में आवे, राग वह मेरा कर्तव्य है और राग मुझे धर्म का कारण है, ऐसी मिथ्याश्रद्धा में आवे, तब उसे मलिनता होती है। परद्रव्य के कारण मलिनता जरा भी नहीं होती तथा निर्मलता परद्रव्य के कारण जरा भी नहीं होती। आहाहा!

कल कहा था न? उस 'लालन' ने पूछा था न? तीर्थंकर चक्रवर्ती शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ छियानवें हजार स्त्रियाँ और तीर्थंकर, तीन ज्ञान के धनी, समकिती, क्षायिक समकिती। हमारा जॉर्ज और एडवर्ड को तो एक रानी। अरे! उस एक के साथ सम्बन्ध नहीं। एक हो या अधिक हो परन्तु अन्दर में स्वभाव की दृष्टि हुई है और पर से भिन्न पड़ गया है, उसे संयोग चाहे जितने हों, वे उसे नुकसान नहीं करते। आहाहा! तथा संयोग छूट गये और इसलिए उसे धर्म प्रगट हुआ, ऐसा नहीं है। स्त्री, कुटुम्ब छोड़ दिये, बालब्रह्मचारी शरीररूप से हुआ, इससे उसे धर्म हो जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह तो बाह्य संयोग का अभाव हुआ परन्तु मिथ्यात्व का अभाव उससे नहीं हुआ। मिथ्यात्व का अभाव तो स्वभाव का आश्रय लेने से, पर का आश्रय छोड़कर सम्यग्दर्शन प्रगट करे, उसे निर्मलता प्रगट होती है। आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से निर्मलता प्रगट होती है और स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर अज्ञानरूप परिणमे, राग का आश्रय करे, आहाहा! तब उसे मिथ्यात्व का परिणाम होकर मलिन होता है। आहाहा!

ज्ञानी, परद्रव्य को भोगता हुआ अथवा न भोगता हुआ,... ठीक! परद्रव्य न भी हो। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार छोड़ दिये हों, लक्ष्मी-धन्धा हो नहीं तो भी वह धन्धा आदि छोड़ दिया हो, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार छोड़ दिया हो। आहाहा! अथवा न छोड़ा हो, हो, यहाँ तो अधिक यह कि नहीं भोगता हुआ। संयोगों में नहीं आता। वह **ज्ञान को छोड़कर स्वयमेव अज्ञानरूप परिणमित होता है...** आहाहा! भले संयोगों को न भोगे परन्तु ज्ञानरूपी भगवान आत्मा तो अज्ञानरूप परिणममावे (अर्थात्) राग, वह मैं हूँ; परद्रव्य, वह मेरे हैं; परद्रव्य से मुझे लाभ-नुकसान होता है—ऐसी जो दृष्टि है, वह अज्ञानरूप परिणमता है, उसे परद्रव्य कुछ फेरफार नहीं कर सकता। परद्रव्य उसे अज्ञान नहीं करा सकता। आहाहा! क्रीड़ा उसकी स्वदृष्टि स्व की या राग की दृष्टि, इस पर पूरा खेल है।

राग की रुचि में पड़ा, उसे संयोगी चीज़ सब छूट गयी हो तो भी वह अज्ञानरूप परिणमता है और संयोग में छियानवें हजार स्त्रियाँ और करोड़ों अप्सराओं में पड़ा हो... आहाहा! तथापि जिसे राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे वह स्त्री आदि मलिनता नहीं करा सकती। आहाहा! समझ में आया? लोगों की दृष्टि संयोग छूटे तो त्यागी और संयोग अधिक, इसलिए अत्यागी, ऐसी दृष्टि है। इस बात से यहाँ इनकार करते हैं। स्त्री, कुटुम्ब छोड़कर, दुकान छोड़कर, धन्धा छोड़कर बैठा हो, इसलिए मानो त्यागी हो गया। वह तो संयोगी चीज़ वहाँ घटी है परन्तु अन्दर मिथ्यात्व कहाँ घटाया है? आहाहा! राग, वह मैं और राग से मुझे धर्म होता है, पुण्य स्वभाव से धर्म होता है, (वह तो मिथ्यात्व है)।

'अधर्म' शब्द आया है, हों! भाई! वह पुराना समयसार है न? उसमें पहले व्यवहार के बोल लिखे थे न? आत्मधर्म में दिये गये हैं, फिर उसके आधार से भी दिये हैं। हरिभाई, आधार भी दिये हैं उस समय। उसमें 'अधर्म' शब्द पड़ा है। आधार होगा सही कोई। वे कहे, पुण्य को अधर्म कहाँ कहा है? अरे! प्रभु! सुन न! आत्मा का वीतरागी ज्ञान, दर्शन, आनन्द स्वभाव से विरुद्ध पुण्यभाव, वह अधर्म है। आहाहा! वह अधर्म कहीं परद्रव्य के कारण हुआ नहीं। अपनी विपरीत मान्यता; पुण्य, वह मेरा और मुझे धर्म का कारण—ऐसी मान्यता के कारण उसकी मिथ्यादृष्टि, अधर्म दृष्टि होती है। आहाहा! पुण्य परिणाम हुए इसलिए उसे अधर्म दृष्टि होती है, ऐसा नहीं है। वे पुण्य परिणाम मेरे हैं, ऐसी दृष्टि करे तो अधर्म दृष्टि होती है। आहाहा! और उस पुण्य परिणाम से भिन्न पड़कर स्वरूप की दृष्टि करे तो पुण्य परिणाम और पाप होने पर भी उसकी निर्मलता को कोई मलिन नहीं कर सकता। आहाहा! बात में बहुत अन्तर है।

ज्ञान को छोड़कर... शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव परमात्मा, वह मैं—ऐसा छोड़कर **अज्ञानरूप परिणमित होता है...** (अर्थात्) राग है, वह मेरा है, उसरूप परिणमे, वह तो उसके स्वयं के कारण से है, पर के कारण से नहीं या कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र मिले, इसलिए हमें यह हुआ, ऐसा कहता था एक व्यक्ति? क्या करे, हमें यह मिले, वह हमने माने। परन्तु माना, वह उनके कारण से माना है या तेरे कारण से माना है? सेठ बोलता है बहुत बार। भगवान सेठ, शोभालाल। हमको ऐसे मिले, तत्प्रमाण हमने माना। उनके कारण माना नहीं है। तुम्हें वह रुचा है, उसे माना है। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार

सम्यग्दर्शन भी देव-गुरु-शास्त्र मिले, इसलिए सम्यग्दर्शन मिला, ऐसा नहीं है। आहाहा! वे तो परद्रव्य हैं। आहाहा!

परद्रव्य को भोगता हुआ अथवा न भोगता हुआ,... अर्थात् परद्रव्य का संयोग हो या न संयोग न हो, भले संयोग न हो, कहते हैं परन्तु आत्मा को **स्वयमेव अज्ञानरूप परिणमित होता है...** राग की रुचि में आ गया। आहाहा! भले वह त्यागी बाहर में कोई वस्त्र का टुकड़ा न (रखता हो), परन्तु जिसे राग मेरा है, ऐसी दृष्टि हुई है, वह अज्ञानरूप परिणमता है। आहाहा! और करोड़ों अप्सराओं के मध्य में इन्द्र रहा होने पर भी वह सम्यग्दर्शनरूप परिणमता है। पर उसे मिथ्यात्वरूप परिणमावे, ऐसी ताकत नहीं है। करोड़ों अप्सराओं में रहा होने पर भी स्वयं सम्यग्दर्शनरूप परिणमता है। आहाहा! और संयोग का बिल्कुल त्याग (किया हो), वस्त्र का टुकड़ा भी न हो, नग्न हो, आहाहा! तो भी अन्तर में मिथ्यात्व भाव—राग वह मेरा और उससे मुझे धर्म होता है, यह मिथ्यात्वभाव मलिनता का भाव कारण है। संयोगी चीज़ का अभाव-भाव वह कोई कारण नहीं है। ओहोहो! ऐसी बातें हैं। यह तो जरा संयोग छोड़े तो मानो आहाहा! भारी त्यागी हुआ।

यह यहाँ कहते हैं। संयोग हो या संयोग न हो। संयोग न हो अर्थात् भोग हो या भोगता न हो, ऐसा। आहाहा! परन्तु स्वयमेव ज्ञानस्वरूप को छोड़कर, चिद्घन आनन्दघन भगवान आत्मा की दृष्टि और रुचि छोड़कर राग की रुचि में आवे तो मिथ्यात्वरूप परिणमता है। उस बाहर की चीज़ का त्याग हुआ, इसलिए समकितरूप से, धर्मरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

तब उसका ज्ञान स्वयंकृत अज्ञान होता है। आहाहा! वास्तव में तो ज्ञानावरणीय का उदय भी जीव को अज्ञान नहीं कराता। आहाहा! वह तो स्वयं जब ज्ञान और स्वभाव की दृष्टि छोड़कर, राग को अपना माने, ऐसा अज्ञान करे, तब उसे दर्शनमोह और ज्ञानावरणीय का निमित्त कहा जाता है। निमित्त का अर्थ (यह कि) वह कुछ नहीं करता। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानावरणीय कर्म परद्रव्य है। वह परद्रव्य आत्मा को ज्ञान की हीन दशा करे, तीन काल में नहीं। तथा ज्ञानावरणीय का उघाड़ हुआ, इसलिए यहाँ ज्ञान की विकास दशा हो; बिल्कुल नहीं। आहाहा! अपनी ज्ञानस्वभाव की दृष्टि होने पर निर्मल ज्ञान का

विकास स्वयं करे, तब कर्म का उघाड़ उसे निमित्त कहा जाता है। परन्तु उसके कारण यहाँ आत्मा में विकास होता है, ऐसा नहीं है।

यह बड़ा प्रश्न चला था, नहीं? वर्णीजी के साथ। वे कहें, ज्ञानावरणीय कर्म के कारण आत्मा में ज्ञान की हीनाधिक दशा होती है। ज्ञानावरणीय घटे तो अधिक दशा हो। कहा, ऐसा है नहीं। बड़ी चर्चा चली थी। मूल पूरे तीनों जैन सम्प्रदाय में कर्म से होता है, परद्रव्य से होता है, ऐसा मानते हैं। इसलिए यह बात नहीं जँची। कहा, बिल्कुल कर्म के कारण आत्मा में ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान का घात हो, (ऐसा) बिल्कुल नहीं है। स्वयं ही ज्ञान की दशा को घातता है, इससे ज्ञान घट जाता है और ज्ञान का स्वयं ही विकास करता है, तब बढ़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? बड़े-बड़े पण्डित गोता खाते हैं और सुननेवालों को कुछ खबर नहीं होती, (इसलिए) जय नारायण, सत्य बात कही। हमारे देखो न कर्म का उदय है तो ज्ञान का इतना उघाड़ नहीं है। ऐसा है ही नहीं। वह तेरी अपनी ही परिणति ज्ञान की हीनरूप तो परिणमाता है, इसलिए ज्ञान का विकास नहीं होता।

यह तो आ गया न? भाई! पंचास्तिकाय, नहीं? 'विषयप्रतिबद्ध'। आहाहा! पंचास्तिकाय (में) 'विषयप्रतिबद्ध' (आता है)। ज्ञान भगवान वह अल्प विषय में रुक गया, वही उसे प्रतिबद्ध है। आहाहा! कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! ऐसी बात। जो ज्ञान भगवान आत्मा की दशा अल्प, अल्प शक्ति के विषय में रुक गयी, वही प्रतिबद्ध और विशेष शक्ति के विकास को रोंधनेवाला है। क्या कहा यह? और वहाँ भी कहा न? सोलहवीं गाथा, प्रवचनसार। 'स्वयंभू'। द्रव्यघातिकर्म और भावघातिकर्म, दो लिये हैं। द्रव्य जड़ है, वह आत्मा को नुकसान नहीं करता परन्तु भावघाति स्वयं पर्याय को घात करता है। आहाहा! अब यह कैसे बैठे? एकेन्द्रिय जीव को ज्ञानावरणीय का जोर है, इसलिए हीन दशा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! उसके भावघात करने की पर्याय अपनी है। द्रव्यघात तो तब निमित्त कहने में आता है। ऐसी बातें, भाई!

यह (संवत्) १९८४ में वीरजीभाई के साथ प्रश्न हुआ था। राणपुर, १९८४ में। ऐसा कि इस निगोद के जीव को कर्म के बहुत प्रकार हैं, उसके कारण यहाँ हीन दशा है? उसके कारण कुछ नहीं। आत्मा में उतने प्रकार के घात की अवस्था का स्वरूप है, इसलिए

उसका घात हो रहा है। जितने प्रकार के कर्म निमित्त हैं, उतने ही प्रकार का घात यहाँ स्वयं से हो रहा है। अरेरे! वीरजीभाई वकील थे न? ऐसा कि, कर्म तो परद्रव्य है और आत्मा को जितनी पर्याय में हीन (दशा) आदि होती है, वह कर्म के कारण है? वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य के कारण आत्मा में नुकसान हो या लाभ हो, यह तो इनकार किया। अत: कर्म, वह परद्रव्य है या नहीं? हें? आहाहा! वह परद्रव्य आत्मा के ज्ञान की हीनदशा करे और वह परद्रव्य घट जाए तो यहाँ क्षयोपशम बढ़ जाए, ऐसा नहीं है। गजब बात, बापू! आहाहा! इसमें तो बड़े नाम धरानेवाले तो गोता खाते हैं। आहाहा!

बड़ी चर्चा चली कि विकारी परिणाम कैसे होते हैं? कहा, अपने षट्कारक से होते हैं। पंचास्तिकाय ६२ गाथा। वे द्रव्य-गुण के कारण से नहीं और षटकारक जो कर्म के, उस कारण से नहीं। आहाहा! परद्रव्य के कारण से आत्मा में विकार हो, यह तीन काल में नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार दर्शनमोह के कारण आत्मा में मिथ्यात्व हो, (ऐसा नहीं है)। वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य के कारण मिथ्यात्व हो, ऐसा कभी नहीं होता। स्वयं ही आत्मा अपने स्वभाव को छोड़कर राग की रुचि करे तो मिथ्यात्व होता है। आहाहा! ऐसी बात है। साधारण बात नहीं। बड़े पण्डित इसमें गोता खाते हैं। हैं? आहाहा! वर्णीजी जैसे, बेचारे ऐसे वैष्णव थे न... परन्तु यह वस्तु नहीं थी। आहाहा! और वह वापस प्रश्न हुए, वे वापस कलकत्ता गये, वहाँ लिखा। गजराजजी के घर में आहार किया। वहाँ शाहूजी आये (और कहा) यह इसरी से पत्र आया है कि विकार आत्मा से होता है तो वह स्वभाव हो गया। कहा, वहाँ जवाब दे दिया है, उठो! सेठ आवे या (चाहे जो आवे)। कलकत्ता में गजराजजी नहीं? उनके मकान में आहार करने गये थे? आहार करके बैठे, वहाँ शाहूजी आये। ईसरी से पत्र आया है कि यदि विकार कर्म से न हो तो स्वभाव हो गया, (इसलिए) पर से होता है। बिल्कुल झूठ बात है, कहा। उस पर्याय में अपना उस प्रकार का पर्याय का स्वभाव है कि रागरूप होना और राग का कर्ता, राग का साधन, राग का कार्य, वह अपने से होता है। राग का साधन—करण भी स्वयं से है। राग का करण कर्म है, (ऐसा नहीं)। जैन में यह विपरीतता बहुत घुस गयी है। वह भी बनिया को निर्णय करने की फुरसत नहीं। ऊपर बैठा (जो कहे वह) जय नारायण! कान्तिभाई!

मुमुक्षु : उपदेशदाता कहाँ थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसे निर्णय करने का (समय नहीं है)। कर्म के कारण (होता है, उसमें) हाँ कर देता है। परद्रव्य के कारण तू भटकता है। परन्तु वह कहे, परन्तु परद्रव्य इसे स्पर्श नहीं करता तो भटके किस प्रकार ? परद्रव्य को स्वद्रव्य स्पर्श नहीं करता। वह तो अपनी भूल के कारण भटकता है, कर्म के कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया इसमें ? सामान्य बात है, परन्तु यह मूल बात है। आहाहा!

यह श्लोक आता है न एक ? 'संग एव' नहीं ? (श्रोता : परसंग एव)। हाँ, वे लोग इसका अर्थ यह करते हैं, देखो! पर के संग से विकार होता है। परन्तु पर का संग स्वयं ने किया, इसलिए विकार होता है, पर के कारण नहीं। यह श्लोक है। भाई बंसीधरजी थे न ? वहाँ तो विरुद्ध में थे परन्तु यहाँ कहे, बात तो सत्य लगती है। और वापस यहाँ से वहाँ जाए तो वापस फेरफार। साठ-साठ वर्ष से घोंटा हो, कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है। ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान की हीनदशा (होती है)। परद्रव्य के कारण आत्मा में हीनदशा होती है। यहाँ तो यह कहा, शंख परद्रव्य का काला चाहे जितना खाने पर भी वह काला नहीं होता। आहाहा! उसी प्रकार कर्म के उदय की तीव्रता चाहे जितनी हो परन्तु उसके कारण जीव में मलिनता हो, ऐसा नहीं है। परद्रव्य में यह आया या नहीं ? आहाहा! साधारण बात नहीं, यह मूल बात है।

इसकी पर्याय उस समय में षट्कारकरूप से परिणमती विकारी होती है। उसे पर का निमित्त हो, परन्तु वह कहीं इसके कारक होते हैं, अर्थात् इसके कारण होते हैं, इसका साधन होता है, ऐसा नहीं है। परनिरपेक्ष। विकार भी पर से निरपेक्ष होता है। यह तो ६२वीं गाथा में तब बहुत कहा। (संवत) १९१३ के वर्ष, २२ वर्ष हो गये, परन्तु लोगों को इतना अधिक निर्णय करने का अवसर नहीं होता कि नहीं, बड़े पुरुष कहते हैं, वह कहीं खोटी बात होगी ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शंख चाहे जितने काले जीव, कीचड़ खाये, तो भी वह शंख काला नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा के पास चाहे जैसे कर्म जोर वाले हों परन्तु आत्मा को मलिनता उनके कारण नहीं होती। आहाहा! पर है या नहीं वह ? वह परद्रव्य है या नहीं ?

ज्ञान को छोड़कर स्वयमेव अज्ञानरूप परिणमित होता है... परिणमे अर्थात्

होता है, **तब उसका ज्ञान स्वयंकृत अज्ञान होता है।** स्वयं से किया हुआ अज्ञान होता है, पर के कारण नहीं। आहाहा! दर्शनमोह के कारण या ज्ञानावरणीय के कारण ज्ञान की हीनदशा अज्ञानरूप हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! साधारण बात नहीं है, भाई! यह तो मूल तत्त्व की बातें हैं। आहाहा! बड़े बंसीधर जैसे, वर्णीजी जैसे गोता खाते थे। उन्हें तो ऐसा लगा कि, हें! कर्म के बिना विकार स्वयं से हो? तब तो स्वभाव हो गया। परन्तु वह पर्याय का स्वभाव है। विकाररूप होना, वह पर्याय का स्वभाव है। दुनिया माने, न माने, इससे कहीं सत्य नहीं बदलता। आहाहा! बड़े पण्डित और बड़े विद्वान इतने वर्ष से हों, इसलिए उनका कुछ खोटा है? अरे! खोटा है, लो।

यहाँ यह कहते हैं कि शंख चाहे जितने काले जीव खाये (तो भी) काला नहीं होता। इसी प्रकार ज्ञानी को चाहे जितने संयोगों का उदय और संयोग हों तो उससे आत्मा में ज्ञान हीन हो या दृष्टि मलिन हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **इसलिए ज्ञानी के यदि बन्ध हो...** है? **तो वह अपने ही अपराध के निमित्त से...** है। आहाहा! कर्म के अपराध के कारण, ऐसे स्त्री-पुत्र मिले, ऐसे समझे न कि उनके कारण मुझे यहाँ भावक्रोध, विकार होता है। (यह) बिल्कुल झूठ बात है।

गोपालदास बरैया हो गये न? जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (बनायी)। यह बातें बेचारे उनकी योग्यता प्रमाण करते थे परन्तु उनकी बहू ऐसी थी, ऐसी झगड़ालु कि उस चर्चा में से उठे नहीं तो एक बार हंडिया... वह कैसा? जूठन... जूठन की हंडिया उनके ऊपर डाल दी। वह उसकी प्रकृति का स्वभाव है। कहो, बहुत चर्चा में रुके, उठते नहीं। यह जैनसिद्धान्त प्रवेशिका बनायी है न? पुस्तक बहुत चलती है। इससे ऐसी स्त्री मिली, इसलिए यहाँ विकार होता है—बिल्कुल झूठ बात है। आहाहा! स्वयं क्षमा करे और आनन्द में रहे तो उसे क्रोध नहीं होता और क्रोध करे तो वह स्वयं से करता है, पर के कारण नहीं। आहाहा! अपने ही अपराध के कारण से **बन्ध होता है।** आहाहा।

भावार्थ : जैसे श्वेत शंख पर के भक्षण से काला नहीं होता... आहाहा! परन्तु इस मनुष्य का देह लो न, शरीर रूपवान हो और काली चीज़ खाये, इससे कहीं काला हो जाएगा? उस पर के कारण नहीं होता। यह तो शंख का दृष्टान्त दिया। समझ में आया? और काला वर्णवाला हो और सफेद श्वेत दूध प्रतिदिन पीवे या रसगुल्ला खाये, इससे सफेद

हो जाएगा ? आहाहा ! परद्रव्य के कारण कुछ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। वह स्वयं अपने अपराध के कारण से दोष करे और अपराध को टालने के लिये पवित्र करे, वह स्वयं के कारण से है, पर का कोई कारण है नहीं। आहाहा !

जैसे श्वेत शंख पर के भक्षण से काला नहीं होता, किन्तु जब वह स्वयं ही कालिमारूप परिणमित होता है... सफेदपने का परिणमन छोड़कर कालेरूप हो, शंख.. शंख.. तब काला होता है। वह तो अपने परिणमन के कारण से काला होता है, पर के कारण से नहीं। आहाहा ! दृष्टान्त देखो न कैसा दिया है ! काले कीड़े खाये, समुद्र में काले कीड़े हों, वह शंख खाये, तो भी वह काला नहीं होता। आहाहा !

इसी प्रकार ज्ञानी पर के उपभोग से अज्ञानी नहीं होता... आहाहा ! पर के बहुत संयोगों में रहा, इसलिए उसे अज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! गजब बातें हैं। छह खण्ड का राजा, एकावतारी इन्द्र को करोड़ों अप्सराएँ, अभी जो इन्द्र है, शकेन्द्र एक भवतारी, वह मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला है और करोड़ों में उसकी एक रानी ऐसी है कि वह भी एक भव में उसके साथ मोक्ष जानेवाली है। साथ में अर्थात् दूसरा एक ही भव है। करोड़ों अप्सराएँ हैं तो भी उसे उनके कारण नुकसान है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! उनका भोगने का भाव और भोगता है, इससे उसे मिथ्यात्व, मलिनता होती है—ऐसा नहीं है। आहाहा ! और जो कुछ मलिनता के परिणाम होते हैं, वह स्वयं के कारण से होते हैं, उसके कारण से नहीं। स्त्री के कारण से विषय की वासना हुई, ऐसा नहीं है। वह वासना स्वयं के कारण से है। ज्ञानी तो उसे भी जानता है। वासना हुई, उसे भी जानता है। उसे एकत्वबुद्धि करके वासना अपनी है, ऐसा नहीं मानता। आहाहा ! तो जहाँ वासना को भी अपनी न माने तो परद्रव्य को तो अपना कहाँ माने ? कि यह स्त्री मेरी और पुत्र मेरा और यह धन्धा मेरा और... ऐ, हसमुख ! परन्तु हमारे पालेजवाले हैं न यह तो ? आहाहा ! कहो, समझ में आया ? आहा ! बहुत सिद्धान्त, ओहोहो !

ज्ञानी पर के उपभोग से अज्ञानी नहीं होता... आहाहा ! बड़ा करोड़ों, अरबों का व्यापार (हो), इसलिए उसे अज्ञान हो—ऐसा नहीं है। छह खण्ड के राजा कहा, करोड़ों अप्सराएँ कही, शकेन्द्र को उनके कारण राग नहीं है, मैल नहीं है। स्वयं के कारण कमजोरी से राग होता है, उस राग का भी वह तो ज्ञाता है। आहाहा ! और सब संयोग छोड़े

हों, आहाहा! शरीर से बालब्रह्मचारी हो, तो भी अन्दर में राग में एकत्वबुद्धि है तो वह सब मिथ्यात्व है। आहाहा! और वह इतना भोगता है तो भी वह समकिती है। भोगता है अर्थात् संयोग में होता है, ऐसा। भोगे क्या? उसे कहाँ भोग है? राग को भी भोगता नहीं तो उसे तो कहाँ (भोगता है)? आहाहा!

एक अपेक्षा से राग को भोगता नहीं और एक अपेक्षा से—नय की अपेक्षा से, ज्ञान की अपेक्षा से, राग को भोगता भी है, पर्याय में। द्रव्यदृष्टि से नहीं। आहाहा! परन्तु वह स्वयं के कारण से राग को प्राप्त करता है। वह राग कोई स्त्री के कारण से या बाहर के कारण से हुआ है, ऐसा नहीं है। अरेरे! उसकी दृष्टि उठा, कहते हैं। पर से दृष्टि उठा और स्व में दृष्टि ले। आहाहा! तो तेरी दृष्टि भी सम्यक् होगी और अपराध होगा तो तू उसका ज्ञाता होगा। वह अपराध पर से हुआ है, ऐसा नहीं माने, मेरे पुरुषार्थ की कमजोरी से हुआ है, उसका भी ज्ञानी तो ज्ञाता रहेगा और ज्ञातारूप से जानेगा कि मेरा परिणमन—कर्तापना है, मैं भोगता हूँ। पर्यायदृष्टि से (ऐसा) देखता है। आहाहा! उसका कर्ता-भोक्ता पर है और पर के कारण यह कर्ता-भोक्ता का विकार हुआ है, ऐसा नहीं है। अरे.. अरे..! इसमें क्या अन्तर होगा इतना सब?

स्वद्रव्य और परद्रव्य के अन्दर का विभाजन है कि परद्रव्य चाहे जितने हों परन्तु तू उन्हें स्पर्श भी नहीं करता और वे तुझे नुकसान का कारण नहीं हैं और परद्रव्य घट गये और अकेला शरीर नग्न रह गया, इससे तुझे अधर्म का त्याग हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उस राग के भाव को अपना माने और राग से धर्म मानता है, नग्न है, वह भी मिथ्यादृष्टि है। एक वस्त्र का टुकड़ा नहीं तो भी मिथ्यादृष्टि है और इसे छियानवें करोड़ सैनिक और करोड़ों अप्सराएँ हैं तो भी यह समकिती है। आहाहा! इसकी दृष्टि कहाँ है, इस पर बात है। दृष्टि द्रव्य के ऊपर है तो पवित्रता ही होती है और जितना पर्याय में लक्ष्य रहता है, ज्ञानी को भी, उसे राग होता है। परन्तु पर के कारण राग होता है, ऐसा नहीं है। अरे! इसमें इतना सब अन्तर है।

ज्ञानी पर के उपभोग से अज्ञानी नहीं होता किन्तु जब स्वयं ही अज्ञानरूप परिणमित होता है, तब अज्ञानी होता है और तब बन्ध करता है।

कलश - १५१

अब इसका कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुङ्क्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम्।।१५१।।

श्लोकार्थ : [ज्ञानिन्] हे ज्ञानी! [जातु किंचित् कर्म कर्तुम् उचितं न] तुझे कभी कोई भी कर्म करना उचित नहीं है, [तथापि] तथापि [यदि उच्यते] यदि तू यह कहे कि [परं मे जातु न, भुंक्षे] 'परद्रव्य मेरा कभी भी नहीं है और मैं उसे भोगता हूँ' [भोः दुर्भुक्तः एव असि] तो तुझसे कहा जाता है कि हे भाई, तू खराब प्रकार से भोगनेवाला है, [हन्त] जो तेरा नहीं है, उसे तू भोगता है, यह महा खेद की बात है! [यदि उपभोगतः बन्धः न स्यात्] यदि तू कहे कि 'सिद्धान्त में यह कहा है कि परद्रव्य के उपभोग से बन्ध नहीं होता, इसलिए भोगता हूँ', [तत् किं ते कामचारः अस्ति] तो क्या तुझे भोगने की इच्छा है? [ज्ञानं सन् वस] तू ज्ञानरूप होकर (-शुद्ध स्वरूप में) निवास कर, [अपरथा] अन्यथा (यदि भोगने की इच्छा करेगा-अज्ञानरूप परिणमित होगा तो) [ध्रुवस्य स्वस्य अपराधात् बन्धम् एषि] तू निश्चयतः अपने अपराध से बन्ध को प्राप्त होगा।

भावार्थ : ज्ञानी को कर्म तो करना ही उचित नहीं है। यदि परद्रव्य जानकर भी उसे भोगे तो यह योग्य नहीं है। परद्रव्य के भोक्ता को तो जगत में चोर कहा जाता है, अन्यायी कहा जाता है। और जो उपभोग से बन्ध नहीं कहा सो तो, ज्ञानी इच्छा के बिना ही पर की जबरदस्ती से उदय में आये हुए को भोगता है, वहाँ उसे बन्ध नहीं कहा। यदि वह स्वयं इच्छा से भोगे, तब तो स्वयं अपराधी हुआ, और तब उसे बन्ध क्यों न हो?।।१५१।।

कलश - १५१ पर प्रवचन

१५१ श्लोक।

ज्ञानिन् कर्म न जातु कर्तुमुचितं किञ्चित्तथाप्युच्यते
भुङ्क्षे हन्त न जातु मे यदि परं दुर्भुक्त एवासि भोः।
बन्धः स्यादुपभोगतो यदि न तत्किं कामचारोऽस्ति ते
ज्ञानं सन्वस बन्धमेष्यपरथा स्वस्यापराधाद्ध्रुवम् ।।१५१।।

हे ज्ञानी! आहाहा! हे धर्मी! तुझे आत्मा का ज्ञान और आत्मा का दर्शन हुआ हो, तो हे धर्मी! **[जातु किंचित् कर्म कर्तुम् उचितं न] तुझे कभी कोई भी कर्म करना उचित नहीं है...** आहाहा! पर का कार्य तो कर नहीं सकता परन्तु राग का कार्य भी तुझे करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! है? तुझे कभी भी, **कभी कोई...** किसी समय और कुछ भी। आहाहा! हे ज्ञानी! तू धर्मी हो तो तुझे किसी काल में और थोड़ा कुछ भी, थोड़ा भी राग का या पर का कार्य करना, वह तुझे है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। अभी तो कहीं उलझकर पड़े हैं, खबर नहीं होती। आहाहा!

ऐसा कि इतने-इतने परीषह सहन करे, और एक ऐसा कहता था। कुरावड में आया था न? कुरावड में वह एक आया था न? एक लड़का है, यहाँ आया था, मस्तिष्क अस्थिर। बहुत पावर फट गया (मान चढ़ गया), क्षुल्लक हुआ इसलिए। बस! यह सब इतना-इतना सहन करे, इतना-इतना त्याग करे, उन्हें धर्म नहीं? इतना सहन करते हैं और इतना सहन करते हैं, वे धीरे-धीरे समकित पायेंगे। यह अभिमान चढ़ गया था। वहाँ कुरावड़ आया था। फिर अभी तो ऐसा सुना है कि मस्तिष्क अस्थिर हो गया, अस्थिर हो गया मस्तिष्क। अंग्रेजी में बोलता, ऐसे अभिमान चढ़ गया। कहा, भाई! मेरे साथ बात करने के योग्य तू नहीं है। यहाँ तो शान्ति से सुनना हो तो बात है। उस बेचारे का मस्तिष्क अस्थिर हो गया। आहाहा! क्या कहा?

हे धर्मी! हे ज्ञाता-दृष्टा स्वभाववाला तू, तुझे कभी किसी काल में भी कुछ जरा भी पर का कार्य और राग का कार्य करना योग्य नहीं है। आहाहा! यदि तू ज्ञानी हुआ और धर्म

प्रगट हुआ हो, भगवान आत्मा पूर्णानन्द के आश्रय से यदि तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, प्रगट हुआ हो तो तू धर्मी है, तू ज्ञानी है, तुझे तेरे अतिरिक्त राग या पर, उसका किसी काल में और कुछ भी करना योग्य नहीं है। आहाहा! कोई भी काल में और कुछ भी, ऐसा। ऐसा कि ऐसा कोई काल आया तो थोड़ा सा तो करना पड़े। भगवान की पूजा और... राग आवे वह अलग और करता हूँ, वह नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू!

[जातु किंचित् कर्म कर्तुम् उचितं न] आहाहा! **'जातु'** अर्थात् काल लिया। (ऐसा है) न? भाई! **'जातु'** अर्थात् काल। किसी काल में और **'किंचित्'। 'जातु'** अर्थात् काल, किसी काल में, 'कभी' है न, 'कभी' यह शब्द **'जातु'** का अर्थ है और **'किंचित्'** का अर्थ कुछ भी। दो अर्थ हैं। आहाहा! **'जातु किंचित्'** किसी काल में, कुछ। आहाहा! प्रभु! तू ज्ञान है न! ज्ञाता-दृष्टा तेरा स्वरूप है न, प्रभु! ऐसा तुझे भान हुआ तो किसी काल में या ऐसा प्रसंग आवे तो मुझे इतना करना पड़े। आहाहा! मुनियों को परीषह आये न? तो विष्णुकुमार को करना पड़ा। नहीं, वह मुनिपना ही छोड़ दिया था। उन्हें मुनिपना नहीं रहा था। दूसरों को बचाने गये तो ब्राह्मण का वेश लिया था (तो) मुनिपना कहाँ रहा? समझ में आया? सम्यग्दर्शन रहा हो, वह अलग (बात), मुनिपना नहीं होता। दूसरे को बचाने के लिये मुनि ने ब्राह्मण वेश धारण कर उससे (मन्त्रियों से) माँगा कि इतना राज, जमीन मुझे दे। यह कहीं मुनि के लक्षण हैं? उन विष्णुकुमार मुनि को मुनिपना छूट गया था। मोक्षमार्गप्रकाशक में अधिकार है। उन्हें मुनिपना नहीं था, मुनि के योग्य कर्तव्य नहीं परन्तु उस समय ऐसा बड़ा काम था और हुआ, इसलिए उनकी प्रशंसा करते हैं। बाकी मुनि के योग्य नहीं है, ऐसा लिखा है। मोक्षमार्गप्रकाशक, टोडरमलजी।

हे ज्ञानी! आहाहा! किसी काल में ऐसा प्रसंग आया, उस काल में, यह प्रसंग ऐसा आया और जाने, परन्तु उस काल में भी तुझे वह करना योग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? हे धर्मी! तुझे कभी, कुछ भी **'जातु किंचित् कर्म'** ऐसा। किसी काल में कुछ भी कर्म। कर्म अर्थात् रागादि का कार्य और पर का कार्य। **'कर्तुम् उचितं न'** वह करना तेरे लिये योग्य नहीं है। आहाहा!

तथापि [यदि उच्यते] यदि तू यह कहे कि [परं मे जातु न, भुंक्षे] 'परद्रव्य

मेरा कभी भी नहीं है और मैं उसे भोगता हूँ'... अरे! दो कहाँ से आया यह? परद्रव्य मेरा नहीं, तथापि मैं भोगता हूँ, यह कहाँ से आया? आहाहा! **[भोः दुर्भुक्तः एव असि] तो तुझसे कहा जाता है कि हे भाई! तू खराब प्रकार से भोगनेवाला है,...** झूठा भोगनेवाला है। आहाहा! राग को भोगता है और पर को भोगता हूँ, यह तेरी दृष्टि झूठी है, ज्ञानी नहीं है। आहाहा! गजब काम। **हे भाई!** आया न? '**भोः**' '**भोः**' है न? '**भोः**' का अर्थ यह किया, हे भाई! ऐसा। **[भोः दुर्भुक्तः एव असि]** अरे! भाई! खोटा भोगने में तू ऐसा आया। आहाहा! **खराब प्रकार से भोगनेवाला है,...** आहाहा! मुझे ऐसा प्रसंग आया तो मुझे करना पड़ा। आहाहा! मुनि बहुत दुःखी थे, इसलिए मुझे राग करना पड़ा और ऐसा करना पड़ा, हे भाई! तेरा कर्तव्य है यह? आहाहा! तो भी कहा है, नहीं? प्रवचनसार में। वैयावृत्त्य का काल हो और ध्यान में न हो, तब राग होता है, बस! परन्तु राग का कर्तव्य मेरा है, ऐसा नहीं है। ऐसे काल में भी राग मेरा है, ऐसा कर्तव्य वह तो तुझे होता नहीं, भाई! तेरा स्वभाव ही जहाँ ज्ञाता-दृष्टा अकर्ता—अभोक्ता है, वह राग को करे, भोगे यह तू '**दुर्भुक्तः**' **खराब प्रकार से भोगनेवाला है,...** तेरी चीज़ को भूलकर और राग का कर्ता तथा भोक्ता होता (है तो) '**दुर्भुक्तः**' आहाहा! खराब भोगनेवाला है। है न! खोटी रीति से भोगनेवाला है। आहाहा!

[हन्त] जो तेरा नहीं है, उसे तू भोगता है-यह महा खेद की बात है! आहाहा! राग तेरा नहीं, स्त्री तेरी नहीं, शरीर तेरा नहीं और तू कहता है कि इसे भोगूँ। अरेरे! गजब बातें, भाई! आहाहा! खेद है। **यदि तू कहे कि 'सिद्धान्त में यह कहा है कि परद्रव्य के उपभोग से बन्ध नहीं होता, इसलिए भोगता हूँ', तो क्या तुझे भोगने की इच्छा है?** कामचारी। इच्छा है? आहाहा! **ज्ञानरूप होकर वर्त... भोगने की इच्छा है? ज्ञानरूप होकर (-शुद्ध स्वरूप में) निवास कर,...** आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)